CHBE ER TICHNESS Mostringical

N REGOGNITION OF THE

DEE PANDKIND INTERESTFORTHE PROGRESS OF ANSKRIT#AND+BENGALI*



कविताकीरकम्

(वङ्गानुवादसहितम्)

धवड़ी-हाइ-खुल-शिवकायतमेन
स्वीत्रविनाश्चन्द्र-चक्रवित्तिना
प्रणीतम्

कलिकाताराजधान्यां

तिरिश-विद्यारत-वर्कस्थ चतुर्व्विश-संख्यात-सम्मन गिरिश-विद्यारत-यन्त्रे श्रीमभिस्वण-भद्याचार्येण सुदितं प्रकाशितस्र

0039

मूल्यम् —। 🕫 जानकषट्कम्।

DEDICATED

w. BOOTH ESQUIRE

ととうととうととうととうととう ととうぶ

M. A., Sc. D.

DIRECTOR OF PUBLIC INSTRUCTION,
ASSAM

IN RECOGNITION OF THE INTERESTS

HE TAKES IN
THE CAUSE OF
EDUCATION.

বিজ্ঞাপন।

সংস্কৃত অমৃতনিষ্যানিদনী অমিতশক্তিশালিনী দেব-ভাষা হইলেও কালের সর্বসংহারিণী শক্তির নিকট আজ পরাজিত। সংস্কৃত আজ মৃত-ভাষা, অনাদৃত, উপেক্ষিত। আজ কাল এই ভাষায় কবিতা লিখিয়া গুলাকারে সাধারণের নিকট প্রকাশ করা নিতান্ত তঃসাহসের কার্য্য, বিডম্বনা মাত্র। তবে এ রুণা চেষ্টা কেন ? মনোবেগ-নিবুত্তিই ইহার প্রধান কারণ। তবে এইটুকু বলা বোধ হয় আবশ্যক যে, ধুবড়ি ইংরাজি বিদ্যালয়ের বার্ষিক পুস্তকবিতরণ উপলক্ষে সভান্তলে ছাত্রগণের আরতির নিমিত্ত সময়োপযোগী গ্রীম, বর্ষা প্রভৃতি পাঁচটী ঋতু-সম্বন্ধে অতি সজ্জেপে কয়েকটী সংস্কৃত শ্লোক রচনা করি। তৎপরে 'পিতৃ-স্তবাষ্টকম্,' 'মাতৃস্তবাষ্টকম্,' 'যুবা' শীৰ্ষক কবিতাগুলি রচনা করিয়া তৎসমুদায়ের পদ্যান্সুবাদ করি। অত্রত্য কতিপয় বন্ধু নির্ববন্ধসহকারে উহা প্রকাশ করিতে অনুরোধ করেন। ইহাই অন্যতর কারণ।

[७]

পরিশেষে আহ্লাদের সহিত প্রকাশ করিতেছি
যে, কলিকাতা প্রেসিডেন্সি কলেজের সংস্কৃতাধ্যাপক
শ্রীযুক্ত হরিশ্চন্ত কবিরত্ব মহোদর অমুগ্রহপূর্বক
পুত্তক মূল্রান্ধিত হইবার পূর্বের আদ্যোপাস্ত দেখিরা।
দিয়াছেন এবং স্থানে স্থানে কিঞ্চিৎ কিঞ্চিৎ পরিবর্ত্তনও
করিয়াছেন। ডজ্জ্বভা তাঁহার নিকট কৃতজ্ঞভাপাশে
স্বাবদ্ধ রহিলাম। ইতি

এঅবিনাশচনদ্র শর্মা।

গ্রন্থকারের অন্যান্য পুস্তক।

প্ৰবন্ধকলাপম্ •	•	•	भूला ॥•
কলাপ-দীপিকা (ব	াখ্যাপুস্তক)	•	" ho
ৰব-ব্যাকরণ •	•	•	» Vo

'প্ৰবন্ধকলাপমৃ' সম্বন্ধে মত।

মহাশয়,

আপনার প্রবীত "প্রবন্ধক লাপম্" নামক পুক্তকথানি আমি আন্যোপাস্ত পরিদর্শন করিলাম। এখানি আপনি হাই কুলের তৃতীয় শ্রেণীর পাঠারপে মনোনীত করিয়াছেন। তাহা উপযুক্তই হইয়াছে। কারণ ৮ বিদ্যাসাগর মহাশদের সঙ্কলিত ঋজুপাঠ প্রথম ভাগ প্রায় সর্ব্বত চতুর্থ শ্রেণীর পাঠা হইয়া উঠিয়াছে। তৃতীয় শ্রেণীর পুক্তকথানি উক্ত ঋজুপাঠ অপেক্ষা কিঞ্চিনংশে কঠিন হওয়া উচিত এবং প্রবেশিকা অপেক্ষা কিঞ্চিনংশে উপযোগী। আমা সর্ব্বত প্রায় প্রাঞ্জল করিয়াছে। সংস্কৃতপাঠ বিতীয় ভাগে সঙ্কলিত-বিষয়গুলির মধ্যে আপনি অনেকগুলি ইহাতে সংগৃহীত করিয়াছেন দেখিয়া অহান্ত সন্ধন্ধ ইইলাম ; কারণ "বীরবরোপাধ্যানম," "হিশ্বিশ্বজ্ঞানৰ প্রতিত্তান ভাগে সন্ধন্ধ ইইলাম ; কারণ "বীরবরোপাধ্যানম," "হিশ্বিশ্বজ্ঞান

পাধানন," "মোহমূলার:" এই করেকটা বিষয় অভিশন্ত উপাদের। বিষয়-নির্বাচনে আপনি বিশুদ্ধ ক্রচির পরিচয় দিয়াছেন। একণে আশা করি, আপনারু অভীষ্ট সিদ্ধ হৃউক[°]। ইতি

শ্রেসিডেন্সি কলেজ ' ২৯–১১–৯৩ শ্রীহরিশ্চন্দ্র কবিরত্ন সহকারী সংস্কৃতাধ্যাপক।

মহাশয়.

আপনার প্রবন্ধকণাপ পুস্তকের হানে হানে পাঠ করিলাম। পুতকের রচনা সরল হইরাছে। আমার পঠিত হানে
এরপ দৃষ্ট হইল না যাহা বালকদিগের হুর্কোধ্য।
আমি অস্ত্র বলিয়া বিভারিত সমালোচনা বা সমগ্র পুস্তক
পাঠ করিতে পারিলাম না। ক্ষমা করিবেন।

সংস্কৃত কলেজ } ১৫ই অগ্ৰহায়ণ }

ঐচন্দ্রকান্ত তর্কালস্কার।

My dear sir.

I have had time to look at your book and am glad to say.....that the compilation is well-selected and will be useful to students who prepare themselves for the University Entrance
examination.

Presidency College

NILMANI MUKERJEA.

'নবব্যাকরণ' সম্বন্ধে মত।

নব্যভারত চৈত্র ১৩-৪।

গ্রন্থকার বলেন,— "ছাত্রণণ ব্যাকরণের স্ত্রগুলি অধিকাংশ স্পেট না বৃথিয়া কণ্ঠন্থ করে; ইহা নিতান্ত দুষণীয়, সন্দেহ নাই। তরিরাকরণমানদে বাণকবালিকাদিগের অনামাসবোধা অতি সরল ভাষায় বাাকরণের মাবতীয় অবশুজ্ঞাতব্য বিষয়-গুলি বিশদরূপে বৃথাইতে প্রমান পাইয়াছি এবং বহুসংখ্যক প্রমান করিয়াছি"। স্থেলর শিক্ষকতা-কার্য্যে বাণ্ড থাকায়, অবিনাশ বাব্, বালকদিগের অভাব বিশেষরূপ ফ্লেম্মম করিয়াই এই পুন্তক লিখিয়াছেন। পাঠ করিয়া দেখিলাম, তাঁহার উপরোক্ত মন্তব্যর প্রতিক্থা সত্য। এত সরল করিয়া, এত অয় কথায় ব্যাকরণের সমস্ত কথা লেখা যায়, পূর্বে ধারণা ছিল না। এই পুন্তকথানি এত স্থলর হইয়াছে বে, আমাদের মনে হয়, অনেক ব্যাকরণকে সাক

করিবে। নিরপেক কুলের কর্তৃপক্ষিপের চক্ষে এ পুতক পড়িলে বে তাঁহারা ইহার আগের করিবেন, তাহাতে সন্দেহ নাই।

> সঞ্জীবনী ১৯শে মাঘ, সন ১৩•৬।

ইংরাজী ব্যাকরণের অফুকরণে অবিনাশ বাবু ওাঁহার নব-ব্যাকরণে অভিনব প্রণাগী অবলম্বন করিগাছেন। বালক-বালিকার। যাহাতে ব্যাকরণ সহজে শিথিতে পারে, তৎপক্ষে তিনি চেটা করিয়াছেন।

> AMRITA BAZAR 20th May, 1899.

We, have received a copy of Navabyakaran, a new Bengali Grammar for schools and Pathsalas, and are glad to say that the work is eminently suited to the purpose. The exercises given at the end of every lesson will be found very useful.

'কবিতাকোরকম্' সম্বন্ধে মত।

v

কলিকাতা ৫১, স্থকিয়াস্ ষ্ট্ৰীট্, ৫ই ফাব্ধন, ১৩•৬ সাল।

অবিনাশ বাবু,

আপনার প্রণীত "কবিতাকোরকম্" নামক প্রছ্থানি আমি আল্যোপান্ত পাঠ করিয়াছি। ইহাতে 'পিতৃত্তবাইকম্," "মাতৃত্তবাইকম্," হেমন্ত ব্যতীত অন্তান্ত ঋতু এবং ''যুবা" এই করেকটা প্রভাব সনিবেশিত হইয়াছে। এই প্রস্থে লিখিত সংস্কৃত প্লোকগুলি রচনা করিবার কারণ আপনি বিজ্ঞাপনে প্রকাশ করিয়াছেন। প্লোকগুলির রচনা অতি স্থালাত হইয়াছে; বিশেষতঃ অন্তে মিআক্ষর দেওয়াতে আরও প্রতিমধুর হইয়া উঠিয়াছে। যুবার ভাব-নিচরে অনেক বৃদ্ধেরও জ্ঞানোদ্ম হইবার সন্থাবনা। প্রস্থানিকে স্থবোধ্য করিবার উদ্দেশে আপনি শেবে কবিতাগুলির প্রে যে যে স্থলে সংস্কৃত প্লোকগুলির ভাব কিছু ছন্নছ হইয়াছে। দেই সকল স্থনে বসাম্বাদ বিশেব আয়ক্ত্রা সম্পাদন করিয়াছে। ফলতঃ

আপনার গ্রন্থানি পাঠ করিলে সন্তদয়মাত্রেই অতিশয় আনন্দ অমুভব করিবেন সন্দেহ নাই। ইতি

আপনাব

শ্রীহরিশ্চন্দ্র শর্মা (কবিরত্ন) সংস্কৃতাধ্যাপক, কলিকাতা প্রেসিডেন্সি কলেদ্র।

विक्रमपुरजनपदिनविधिना श्रीगुता सुविनाधकनः काविर्तास कितासोरकनासियं यत् खळकवायं रिवतं, तत् सरससरखपदममाय-समितं प्रसादगुषपुक्तसः ; तहहा कस्य न सानन्दसन्दीको जायते ? परमाधतः पुसकिनसायोपानं पठिता सम्माक्त सन्विक्षकतीया प्रीतिजाता। धुनकी परेजीविद्यालयस्य गुणविद्यार्थिनां वार्षिकपारि-तीविकवितरसमंसिदं कतिपयवसारं यावत् एतरपुसकान्यगैतं विक्रिस्तिवेषं समयेतेन्दाने समस्येत् प्रतीवसासीत्। तिवि श्रीटडन्टस्य सम्बद्धाः समयोद्यार्थस्य वस्त्रम् । साह्यस्य सक्द्याः सुवियः एतम्यविन सम्बद्धाः स्ववियः एतम्यविन सम्बद्धाः स्ववियः

धनको २६ माघः ११-६ त्रीमोहिनीमोहनशबाँग्यो विद्यासङ्गराः

भवदी हाइ खाल-प्रधान-पश्चिता:।

कविताकीरकम्।



पित्रस्तवाष्ट्रकमः।

प्रतिदुर्ह्मभमुत्रममप्यलभे यदनुग्रहती नरजवा भवे। शिरमा वचमा मनमा मततं तमइं पितरं प्रणमामि हितम्॥१॥ चरतीह तनृतक्रेष चलः पट्यीवनपुष्प उपाधिफलः । मम ययभवः सुषमीऽवहितं तमकं पितरं प्रथमामि क्तिम् ॥ २ ॥ उपरेश्रशतैय हितै: सततं सदृशं वहता निजसचरितम्। मम ग्रेन चिरं चरितं घटितं तमहं पितरं प्रवामामि हितम् ॥ ३॥

१ । इत्तमत्र तीटकम् । तक्कचचं यदा — वद तीटकमस्थिसकारयृतम् ।

प्रावक स्प्रम क स्थितक स्थ तकं मम पुन्यतमं परमञ्च गुरुम्। खत एव यतस हितं विहितं तमहं पितरं प्रणमामि हितम्॥ ४॥ मम जीवननिर्देतिभावनया विनयोत्रतिमञ्जलसाधनया । निजजीवितमेव यतः चपितं तम इं पितरं प्रवामामि हितम् ॥ ५ ॥ निगमस्य यद्यार्थवरेखगणैः शिर'धार्थमवश्वमुपास्यधनै: । खतु यस्य मयाच्तवाख्यस्तं तमन्त्रं प्रवासी हितम् ॥ ६ ॥ ग्रहजीवनको सस्धर्भं सतः मम येन च कारितमाचरतः। चिरबन्धुबध्मिलनं ससितं तमइं पितरं प्रबमामि हितम् ॥ ७॥

१। बदमाबिर्यस्प्रवीगीऽपि स्थाते।

प्रियक्त विधियमिष्ठास्य सतः समुपास्यसुरस्य च मूर्त्तिमतः। चरणार्चन्युस्यकरः सततं तमष्ठं पितरं प्रसमामि दितम्॥ ८॥

मात्सवाष्ट्रकम्'।

वन्यं में मङ्गलनिकरकरं मन्द्रखालं इदयमलइरम्। सानन्दं सुन्द्रतमममलं वन्दे मातस्त्रव पदकमलम्। १॥

प्रत्यचं नन्दनवनकुष्ठमं मन्दारादेवत बहुषुषमम् । प्रष्यामोदं विमलपरिमलं वन्दे मातस्तव पदकमलम् ॥ २ ॥

१ : इत्तमच अनरविकस्थिता । मी जी जी जी अनरविकसिता ।

ध्यात्वा ध्यात्वा प्रणिहितमनसा धृत्वा धृत्वा सुविनतश्चिरसा । बह्वा बह्वा करतलयुगसं वन्दे मातस्तुव पदकमलम् ॥ ३॥

देवीमूर्त्ते नियतमनुपमे
याचे द्वन्यन्दिरमधिवस मे ।
कालान्तर्भिक्तसिल्लतरलं,
वन्दे मातस्तव पदकमलम्॥ ४॥

कारुखोक्सस्तव खलु हृदयं धारापूर्णं विश्वरस्तमयम्। बास्येऽभूद्यसम यरणमलं वन्दे मातस्तव पदकमलम्॥ ५॥

तं में स्वर्गस्वमिस मम गुरु-स्वं में धर्मस्विमिष्ट सुखतरः। सर्वस्वं में भव-मरु-सलिलं वन्दे मातस्वव पदकमलम् ॥ ६॥ स्वर्थे तेऽन्तः करणगुणचयं कान्तं संकामय मिय सदयम् । देहि लंदुर्ब्वहृदि च बनं वन्दे मातस्तव पदकमन् ॥ ७ ॥ कष्टं सोदं किमिव मम कते निःस्वार्थं सन्ततहितनिरते । स्मृत्वा चित्तं भवति हि विकनं वन्दे भातस्तव पदकमन् ॥ ८ ॥

योषाः।

नवमितमञ्ज पयोधरपुषं नवमितमञ्ज वयोदलभष्मम्। इह च जनः किल मञ्जलतर्षः भुचिरितिवैति नवीक्षतवर्षः। १॥

१। नवं कि पयोचरपुषादिक सुन्दरं, नृतमतः सर्वमित नवं सुन्दरं, जनवेक सर्वे एव सीन्द्यंप्रिय इस्वेवं मनसान इव निदास्तरं-स्वीकानां सनीरस्ननाये प्रातनं वर्षे नवीक्रय एति इत्ययः। इत्यन्त सामरसम्। इक बद तामरसं स ज-नायः।

₹

खरतरसीरकरच्चियमाण-सकमलराजिसरोरसमानः। चतिश्यभीततिरोष्ट्रितवर्षः ग्रचिरयमिति नवीक्ततवर्षः ॥ २ ॥ रविवसतापितपत्वलसन्त-र्न विचलितो जलधिर्न च तान्तः। इत इव दर्शितनीचनिवर्षः श्रुचिरयमिति नवीक्ततवर्षः॥ ३॥ ज्वलयति सस्वसमाञ्जलदावं निजक्तसभम्म विभीषणरावम्। तरुनिकरः सप्यस्परवर्षः श्चिर्यमेति नवीक्षतवर्षः ॥ ४ ॥ विहितसरखसलं प्रतिसध्य-न्दिनतपनेन तपोवनमध्यम् । पश्ररिष्ठ निर्भयवैरसमर्घः । श्वचिरयमिति नवीक्ततवर्षः ॥ ५ ॥

१। निर्भयनैरसमर्थः — निर्मसः अयं नेरं च बसास निर्भयनैरः स चासी समर्थयेति ।

महरतिभीषणमूर्त्तिरपार: खल इव किं-सिकतातुलसार:१। प्रविरलबान्तहलाहलवर्ष: प्रविरयमेति नवीक्षतवर्ष:॥ ६॥

परिषतसन्दरजम्बुरसालः स्तरसमनोहरकण्टिकतालः । वननिवहः सफलोऽद्य सहर्षः स्तिदियमिति नवीक्षतवर्षः॥ ७॥

गतमध्यीवनपुष्पितकार्यम् । षिगततुष्पफलं क्वतकार्यम् । जगदधुनेति समुद्रतहर्षः स्विरयमेति नवीक्वतवर्षः ॥ ८॥

१। किं-सिकतातुलसार:—सिकता: दन किं कुव्यितम् चतुर्थं विपृत्तं सारं घर्न यस्य स इति खलपचे। मदपचेतु किं कुव्यिता: सिक्ता: एव चतुत्तं: चनित: सारी यस्य स इति।

१। नतमध्यीयमपुष्पितकार्यम् — नतं सधः वसनः एव वीयनं तिक्षम् पुष्पतं पुष्पमयं कार्यं वस्त्र तत्।

विकसितकोमलकोरकजाले लितर्रविर्देवमोऽन्तिमकाले । इरति मनः सुमनः-परिमर्थःः। श्रविरयमेति नवीकतवर्षः॥ ८॥

नदित विस्क्षागणीऽस्तवधें कतकवनं मधुवधिं सहधेम्। किरित सुधाच ग्रशी ग्रभदर्भः ग्रुचिरयमेति नवीकतवर्षः॥ १०॥

भात:!

षस्तसमानं विभुगुणगानं कुरु धततानं सद्धदयदानम् । परिचर कामं रिपुमभिरामं भज थिवरामं विधिमविरामम् ॥ ११॥

१। सुमन:-परिमर्श: — सुमनीक्षिः कुसुमैः परिमर्शः सन्यकौ यस्य सः। दिवसः इत्यस्य विशेषणम्।

२ । क्रतकावनम् — क्राचिमवनम्, उपवनम् इति यावत् ।

र्। इत्तमत्र कुसुनविचित्रा। न-य-सक्ति न्यौ कुसुनविचित्रा।

वषाः'।

जलदीऽम्ब् वर्षति रुवन्ति च भेका भटिका वहन्ति निपतन्ति च हचाः। चपला च खिलति विभेति च बाल: समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकालः॥१॥ षतिलुप्तदर्भनरवीन्द्ररजस्रं चरती इतोयमिव दिम्बनितास्त्रम्। करकाशताशनिनिपातकरालः समुपस्थितोऽयमधुनाम्ब्दकालः॥ २॥ नववारिवर्षणमवाप्य क्रतार्थः मत्रो नदीः स्जिति भूतिहितार्थः । धरणीधरी विध्तवारिदमालः समुपस्थितोऽयमधुनाम्बुदकानः॥ ३॥ चिरपीयमाननवनी रदनी लं गगनं हि नेत्रयुगलैरवलीलम्। विचरन्ति चातकगणास रसाल: समुपस्थितोऽयमधनाम्बदकातः ॥ ४॥

१। इत्तमत्र क्षड्स:। सनसाः सगीच कथितः क्षडसः।

वासकार्क्ष्यातकालुखं न-विनीतं स्यतानयुक्तसकितं किस गीतम्। क्षरते बदा द्ववितयाचनपानः समुपस्तितोऽयमधुनाम्बुदकासः ॥ ५ ॥ जलदान्तिनेषु विश्वरन्ति बलाकाः खलु संस्थ-नन्दन-मनीहर-नाका:१। पवलाक्योभिहिमसुन्दरमाल-मधुनागती हि मधुराब्बुदकासः ॥ ६॥ कलधीतरखनिकषीपलभाति-विंखसत्तिहरून इव प्रतिभाति । सरमाञ्च हेमलतक जातमानः १ समुपस्थितीध्यमधुनाम्बुदकासः ॥ ०॥

१। कत्त्य-मन्तिकर-माचा:-- कत्त्यः बन्दमिव बन्दनकाननेन समीकरः नाकः वासां ताः।

१। धरनाव्यक्षेत्रवतक्षण्यतभाष:— रता श्रीमा तथा पाव्या गुजा वेतवता तथा धक्ति: चरनाव्यक्षेत्रवत:, अण्य कामवर्षेण तनावः। गुणाव्यवर्षेत्रवायनाव्यतमावत्यरित विवश्यत्रवित्यः ततिभाति स्वर्षेः। यक्षा रवा व्यक्ती: वा पाव्यक्षेत्रवता वश्यक्षित्रावित्री व्यक्तिता रव तथा

सुरजधान ध्वनति खे विवरिकी

शिक्षिनोइ कृत्वित सुदा स्वनयिकी।
इसतीय नीच इति पुष्पितभाकः

ससुपक्षितोऽयमधुनाम्बुदकासः ॥ ६॥
सुरराजचाप इति यहिवि इष्टं

शिक्षपुष्पमासिखितमस्ति विविचन्।

निद्येरवाष्य फलकं सुविभास
मधुनागती हि सधुराम्बुदकासः ॥ ८॥

थरत्।

घनानस्वराद्यार्षिकान् सारयक्तीः प्रसादेन चामाः समुज्ञासयक्ती । दिसक्ती च रूपं भृवे सोभनीयं समायाति नूनं मरसुक्दरीयम् ॥ १ ॥

सहित: सरमाखडेनस्ताः इषः यदुनन्दनः स तनास इषः । विद्युदर्यया रमसा रममायः तमासक्रयः अषः इषं विस्ततप्रदनः प्रतिमाति दस्यैः।

१। सारवनी - चपसारवनी । इत्तमच सुवक्रश्यातम् । सुवक्र-प्रवातं चतुर्भिर्यकारैः । १। चानाः - दिव्यपूर ।

समालोकयन्ती सरोऽक्षे सहासं समं लोकचित्तारविन्दे विकासम्। समन्ताच पद्मं प्रफुलं खलीयं समायाति नृनं ग्ररसुन्दरीयम्॥ २ ॥

यनैः सैकतयोणिविम्बे १ ष्टयुलं गतौ यान्ति मान्यच मध्ये १ तनुलम् । तटिन्योऽङ्गना यौवने वेचणीयं १ समायाति दृष्टा घरसुन्दरीयम् ॥ ३ ॥

सितानम्बुस्म्याः प्रियायाम्बुवाहाः प्रसदाल्पनीरास नद्यो निरीहाः । सतीर्थः समत्वे सदा वर्त्तनीयं समित प्रमान्ती यरत्नुन्दरीयम् ॥ ४ ॥

१ । सैकतयीणिविम्ने — सैकतवत् विपृत्ते यीणिविम्ने इति सङ्ग्रनापद्ये । तटिनीपद्येतु सैकतम् एव यीणिविम्नं तस्मिन् इति ।

र। नध्ये — कटिदेशे इति कड़ नापचे। दशीः पुलिनशीः तट-सैकतशीर्वा इति तटिनीपचे।

[.] ३। ईचमीयं-दर्शनीयम्। वा दव। एवसन्यवापि।

घनाम्बुसुतिस्नातपूर्वा वराङ्गं ं विपद्धं मही पङ्कजामीदसङ्गम्। श्रलं बस्यजीवै: करोति खकीयं समायाति हड्डा शरलान्दरीयम्॥ ५॥ गतेश्वामरत्वं प्रस्नप्रकाशैः समन्दानिलान्दोलितानम्बकाग्रै:। करोतीव या बीजनं प्रीणनीयं समायाति दृष्टा प्ररत्मन्द्रीयम्॥ ६॥ विनैवोपयोगं न किञ्चित्रशस्यम इतीवाखिलं कुर्वती शालिशस्यम। विपाकेन रम्यं क्रिवेरईनीयं समायाति नुनं शरलम्दरीयम् ॥ ७ ॥ विपत्तेजसां गौरवायेति सत्यं

किरन् चन्द्रिकाजालमाञ्चादमूर्त्तम् । श्रश्री भाति यकोचसुक्तोऽदितीयं

समायाति दिच्या गरस्न्दरीयम्॥ ८॥

१। मन्त्रमायोः — विकाशितकृतुमीः, काशेः इत्यसः विशेवचन् । काशेः — काशवादीः । या मधीः।

र। बाह्यसूर्तम्-बाह्यद्रमृतिम्। सादे तः।

गतं चार वामा विनेतुं यतन्ते मयूराय मच्च खनं नो द्रियन्ते। न वेतीव इंसाः पदं कौ नदीयं चिपन्थेति नृनं यरसुन्दरीयम्॥ ८॥

नभी निर्मालं व्यक्ततारावितानं चिराचन्द्रपादेरलं घोभमानम् । कुमुद्दक्षरो वा निधि प्रेचणीयं समायाति दृष्टा घरकुरूरीयम् ॥ १०॥

सरोजालयाने चर्चापीयमानं सुवन्ति प्रभातेषु तेजः प्रधानम् । खगा वन्दिनो हारिगीतेष कान्तं हरिंश् ग्लोत नूनं ग्रदसुन्दरीयम् ॥११॥

१। खनाः पविची वन्ति वय सुतिपाठका वव प्रधातेषु कारि-गौतैः समीकरनामैः वरि स्थै सुवनि । तथै विकृत्त् १ सरीजा-स्वतः क्षेत्राचीयमानन् — सरीजास्यः सरीवरस्य क्षानि प्रधानि एव वृंत्रचानि चर्च्वि तरायीयमानन् । सुनः विकृत्त् १ तेवः स्थानन् — स्वीतिकपदार्थानां कर्ष्यपानन् । सुनिक्षि क्षिकृत्त् १ सामन् —

दिवी देवकुष्मादिदानीष नीन: १ किलैंवं हि मर्ती मनोरष्मनी न: । नमामस्त्रमीर्घ जगहरूनीयम् षहो येन सृष्टा यरसुन्दरीयम् ॥ १२ ॥

शीत:'।

विगते वयसि प्रथमे शिथिल-स्तनुकान्तिगुणो भवति क्रमशः। प्रसवस्तरतः स्वलने हि रतः शिथिरः ससुपागत एव यतः॥ १॥

कननीवम्। प्रभातत्वीं कि कमनीवकानिः। यदा—खना व्योत-चारिको वैन्दिनः चनरवन्दिन इत्वर्षः इरि विच् कुविनः। विच् विक्तृतन् १ वरीवाववा प्रधाववा कच्छीः तवाः चक्रेक्वेन प्रविनेव चारीवनानं सद्वर्षं इस्तमानन्। तेनःप्रवानन्—तेन्निकां प्रवानन्। कानन्—दिवसम्।

१। योगः-व कवः।

र । उत्तमप वीटकम् । अवनं तुलं प्राक्।

तरवो विगलत्क्षसमच्चदना-सलयन्ति तपः क्षयसंहननानः । विजन्न दिषयानिभवं जवतः शिशिरः समुपागत एव यतः ॥ २ ॥ महिमा परमः प्रक्तति हिमवान् धवलो धवल: क इवातिमहान्। इन में तनुवाग्विभवी विहत: शिशिर: समुपागत एव यतः ॥ ३॥ धनदानुग्रहीतहरिजियया मिलितुम्बरते तपनस तया। सुखमुक्क्सितं मिहिकाक्कलतः शिशिरः समुपागत एव यतः ॥ ४ ॥ जनसेव्य इतीव ग्रंगी न सदा-ऽधिगुर्वनिताश्रमुखी चणदा। प्रभिषिचिति गां तुहिनच्छलतः शिशिरः समुपागत एष यतः ॥ ५ ॥ 🕟

१। शप:क्रमसंहननान् - तपसा क्रमं संहननं भरीरं येवां तान्।

मिलनच्छिविरके उका । च ततः समवेदनया विकलीभवतः । विकतान्मधुराद्विकिरो विरतः यिथिरः समुपागत एव यतः ॥ ६॥

तमः साररसातलमेव गतिः खलु मेऽतिखलस्य फषोतिमतिः । व्ययते ग्रुषिरं शिरसावनतः शिशिरः ससुपागत एष यतः ॥ ७॥

रुचिरी न शुचाविव वार्य्यनिली विषमी न च ताविष रव्यनली। प्रियताप्रियते चरिताङ्गवतः शिथिरः समुपागत एष यतः ॥ = ॥

१। प्रस्तीकारयुक्त उपाश्रन्दीऽपि हस्यते।

र। भदनातमञ्ज्यमयोगीऽपि हमाते।

इ। विषमी प्रतियी।

षधुनास्तराष्ट्ररमेषस्यः । सतु दुःस्वकुषासिनिवर्णस्यः । स्यविरो दिवसः समतार्षं गतः मिमिरः सस्यागत एव यतः ॥ ८॥

वसन्तः।

राजन्यपूर्वी वियमात्रयन्तः
प्रवालपुर्वेद्धरवी इसनः।
कतानावन्यो हि हिमी गतीऽनां
हड्डागतं सन्तमबी वसन्तम्॥ १॥

१। वनिषश्याः —न विषम् वनितर्धं सुवां वस्त छः। उदस्य सुव्यत्याः व्यवनितः इति भावः, इति व्यविरपचे। दिवसपचे तुन विषे वन्ताने सुवाः सुवाबरः इति। प्रदोषः शन्तिन न रमचीय इति भावः

[्]र । इ:खड़डाबिनिवर्षतुख;—इडा इजकटिका तकार पावि: ' त्रेची इडावि:। इ:खं इडाविरिन तेता निवये तुखं नदनं यक्त स इति व्यविरपये। इ:खा इ:खड़ायिया पत्रीतिकरा इति वानत् .इडावि: तथा निवये नविनं तुखं तथननानी वक्त स दति दिनसपये।

वष्टित वाता मसयाच सन्धं मन्दं समझात् समनः-सगसम् । पङ्गातकूलाः सतरां विरनाः समामतोऽयं सुखदो वसनाः ॥ २ ॥

तृत्वित्त वाला सितकाय कुचे गुच्चितिमा मधुष्यपुच्चे । गायन्ति कर्चास्तमुदमन्तः समागतीऽयं सुखदो वसनाः ॥ ३॥

षापूर्यसीऽखिसदिन्दिगर्सं कूजित कान्तासिताः सुवच्छम्। पिकाः प्रकार्सं सदमावस्तः समागतीऽयं सुखदी वसनाः॥॥॥

दिवा निवायामनियं चुरङ्गाः नदन्ति नाना मधुरं विषङ्गाः । मनो जनानामनुरस्वयन्तः समागतीऽयं सुखदो वसन्तः ॥ ५ ॥

नवां नवां कासिव यास्ति कान्ति दिने दिने यौवनमाश्रयन्तीम। चड़ान्यवन्या निखिलामि इन्त समागतोऽयं सुखदो वसन्तः ॥ ६॥ वाणीनिकुच्चे तक्णा भवन्तः क्रव्यंन्त वेलिं रुचिरे चरनः। रसन्तदीयप्रसवात पिवन्तः समागतीऽयं भवतां वसनः ॥ ७॥ धनानि मानाननधीनहस्ति दानावदानैरवदातकीर्त्तिम्। लब्धा रमन्तामिष्ठ भूवनान्तः। समागतीऽयं भवतां वसन्तः॥ ८॥ क्रवा हितं नन्दनकाननान्ते रम्ये जनानामपि जीवनान्ते। सोपानतां यान्यिव तन्नयन्तः समागतीऽयं भवतां वसन्तः ॥ ८ ॥

१। भूवनानः - भूरेत वनं तस्य भनाः मध्ये।

र। जीवनानिऽपि जनानां दितं काला तत् दितं सीपानतां,

भूभेदमा बहुत जीवित जिण्युकामी

 थोगी स्वयं चिद्यमेख्यपदोऽफर्नेषी ।
 विष्यस्य योनिरभवी विस्तयोऽपि यस्मिन् भूयिष्ठभूतिरवतादिशिवात् शिवो वः ॥ १ ॥

> भवीतग्रास्त्रस्तरणः प्रवीणो निसग्रोभां विचरन् दिदृष्णः । श्रुची निसग्वेतरसः प्रदीषे जगाम कथिज्ञसराश्चित्ताम् ॥ २ ॥ महानयं मार्तनोदितैमें स्नमं सुदसम्बुक्षणेः क्षपातुः । कलं नदन् वीचिभुजैः ससुद्र-भालिङ्गतीविति सुदं युवाग्रोत् ॥ ३ ॥ .

नयन इव रस्ये नन्दनकाननास्ते यानु भवन इति श्रेष:---इत्यन्त्य:।

१। इत्तमत्र वसन्तिलक्षम्। प्रेयं वसन्तिलक्षकं तभना नगी गृः

हयस युक्तं जलधेरपास्तिः सतो महांस्तिदिवयस बीधः। परीपकारिषु रता सङ्गलः जानन्ति तेषां चरितानि धीरा: ॥ ॥ ॥ श्रुतिचितीद्ययगोध्यगामेः समिधिता चान्तरभावभक्ताः। विनियेयसामनि तस्य सेत्मः श्रंत्रज्ञवन्ती वत वाक्षपथेन ॥ ५ ॥ षिक्षनं सुद्रतरं युवानं प्रभुव रक्नाधिपतिः पुराणः। भवेचते मां सदयं न वर्त दुष्पाप एवास्य समानधन्त्री ॥ 4 ॥ द्यास्यराष्ट्रम्बपितप्रियेन्दो-रयं हि रामस ग्रंच विनेतुम्। शिलोचयं प्रत्युरसं दधार हवाय मला प्रियजीवितं स्वम् । ७॥

१। उपाक्तिः सेवा समूपेति सावत्।

र । चेतुम्-सातुम् ।

रिप्रसाधायक दरेखनेन निवेश्य विक्रिकियते तुवेसम्। ख्यामनानेन सः पुचते च भेटपष्टी नाम फलं विक्रत्याः ॥ ८ ॥ सरासरास्तं सतरां ममन् रत्नानि इवानि ददौ स धनाः। तजा दितकशापि च रवस्र्भ-बली किकं किं खलु नास्य दुसम् १॥ ८॥ नेदिष्ठक शायस चुम्बिनास्य स्यामीहकान्तेन क्रतलुखापि। दूराइवैयें हि विक्रमाणा भजन्ति नद्यो गुणगतिष्योषम् ॥ १०॥ भूतानुकम्पी समपचपातः प्रेमैकमन्त्रीऽव्यसनी यद्यायम्। भवोऽभविषदयदि महमर्थी-ऽभोष्याम् प्राभीष्यःभिष्टेव नावाम् ॥

१। स्व प्रसिद्धी पाण्याधिः। २। तस्या — तस्यान् समुद्रात् जाताः। १। पाशीक्षान् चन्यवन्।

यहच्छयैवं नयनं प्रतीचां सतः सखेदं वदतः पपाते । ईर्षावश्यवेव रविश्वकर्ष • लञ्चावकाशोऽस्य मनोऽध्यिनष्ठम् ॥ १२ ॥•

षस्तं प्रयान्तं गणयन् विपत्नं खित्रारविन्दानन षाधिनेव। जगाद भद्रः करुणं तमुच्चे-. र्मृकाः परेषां व्यसनेऽस्मिचित्ताः॥१३॥

क यासि भानी विरम् चणंभीः पृच्छाम्प्रहंते वद का दग्नेयम्। काते स तेजोविभवः कथंवा व्यवस्थसीव स्वयमेव मर्सम्॥ १४॥

यक्के सुखसर्यकरं गयाक्क-मूर्जंखलो भीमकरैनिरस्य। यहीतराज्यः सहसा विहस्ती निर्मासितस्तेन पुनस दीनः॥१५॥ समुवितं हीनदशामतीत्व लगेत लोको यदि यक्षश्रीलः । उक्कच्छतोऽधःपतनच भाव्यं कार्य्येर्न वार्क्येवपदेष्टुकामः॥ १६॥

षायान्ति इन्त वणमेत्य यान्ति सुक्पसम्पद्मुखयीवनानि । इत्येव किं्वा दृषु सम्प्रमातुं पूर्वाचनादृष्टुंगतोऽस्तमिष ॥ १७ ॥ युक्तम् ।

हुतं पुरोऽयं परिदृष्यमानः क्रूरोऽभिस्त्यं चिलतोऽभदेत्यः। प्रसम्भ हाकामित दोनमेनं हारं हि सत्यं व्यसनं बङ्गाम्॥ १८॥

धिक् ताम् घरेरे खलहक्त मेघ कस्ते गुषः पोड़यतो सुधैनम्। परापकारस्तव मोदङ्गतु-वैजैईसकेव निइंसि जन्तुन्॥ १८॥ धिक् लाम् घरेरेऽकतिवदृष्दुराक्षम् करात्ततीयस्तव जन्मदोऽयम् । तमेव मथासितरां न जाने का ते गतिः स्थात् पवनेऽतिक्ष्टे ॥ २०॥

चरेति दिष्या परिदृष्यतेऽसी स्रोराननः पूर्णेकलः सुधांग्रः । सुधाभिवर्षी स्वपयन् सुतप्तां पृथ्वीं, परादेगः प्रतियोग देवक् ॥ २१॥

मीतागमः सज्जयितं वसन्तं स्थासृत् सरिलात् सुखसैकताय । सुदुःषद्वात् तेजस एष सोमो दुःखं सुखायैव विधेर्विधः स्थात्॥ २२॥

कामप्यभिख्यां कलघीतत्तकं साक्षं दधात्येव कुतीऽन्यवा सार। भूपचालं किं वनितास्त्रविस्वं सीनास्त्रि नी पास्तरस्य पद्मम्॥ २३॥

१। वक्तरित्—वक्रतज्ञ। १। सावभिका।

धनावानीनी न डि मे कलडर कलाऽनलक्षं कुरु मा नलक्षम। दलहितोऽवि: कतवानमोघां मन्ये नदीष्येन कलासुर याज्ञाम् ॥ २४॥ चिरं कयं क्रचिगतीऽन्ययासे-रचालिताङोऽनिश्वधीतगानः। कथं सदोषः सवमाप्रियोऽसौ न लज्जते वा इसतीव सुन्नी: ॥ २५ ॥ नीलं ललामं किमदः कुतस्यं ग्रमोऽयवा कि हरिष: किसहा। नाखी न चान्यो नतु निश्चिनीमि वर्षामिका विज्ञविधेसु लेखा॥ २६॥ त्रानांवलिप्ताः प्रणिधत्त सन्धा व्यासत्तवित्ता विषयेषु मिष्या। जानीत सत्यं मनुजा मदीयो-ऽचराचरचास इतो हितो वः ॥ २७॥

१। चक्कडन्-चडर्डितन्।

१। कलास नदीचेन कलाभिक्रेन प्रशिक्षा।

उत्पद्यते मुर्च्छति पूर्व्वतेऽयं पूर्णः चर्णं जीर्व्वति नखतीत्यम्। प्रम्बच्चरीरच परीरिणाँ वी जातस्य सामान्यविधिः पुनर्भृः ॥ २८॥ १

धर्मा प्रधान्यर्णवमात्रयध्वं जन्मन्नमन्तर्विमलीक्षरध्वम् । सुदर्भनास्त्रेण पराजयध्वंः • रिपंच सर्वान् प्रवलप्रतापान्॥ २८॥

स्पष्टं यदेतिक्कि स्वितं विधाना नरान प्रथ्यन्ति पटन्ति नापि। संस्टब्य दोवन्तु रटन्यदोषे यभीऽयभो यज्जनजिक्करजन्यम्॥ ३०॥

१। पुनर्भू:-पुनर्भव: पुनर्जन्य इति यावत्।

२। क्रियाचयेऽच अंबद्दवम् चात्यन्तिकार्थयोतनार्थम्।

१। चकारानाजिकमञ्जूखापि प्रयोगी हम्पते ; यथा "हिसहस्येष्ट क्रिकेन नासुक्तिः, प्रथयिष्यति" इति ।

अस्ती ह किं को अध्यपरः पदार्थः परार्धजन्मा गुणक्यकान्तः। सधानिषेकी प्रकातिं कि चण्डीं प्रसाद्य सर्वान् स स्खाकरोति ॥ ३१ ॥ मनोच्चासी मध्याभिरामा प्रशास्त्रमूर्तिश्व विविक्तवेशा। योभां बधुः कां प्रक्रतिविभक्तिं दृष्टाचा जातं सफले हि नेत्रम्॥ ३२ ॥ घनालिबालाः गगनालिकाः इसी पयोधिजिहा च पसाग्रवासाः। षदृष्टपूर्वं रमणीषु रतं न प्राक्ततेयं रमणी तु देवी ॥ ३३॥ कादस्विनीलम्बारुणारुणांश्व-सीमन्तसिन्द्रविभूषणासौ।

भनन्यभूषा नयनाभिरामा
 न प्राक्षतियं रमणी तु देवी ॥ ३४ ॥

१ । चनाविवाला-चनाविभेंत्रनावा एव वाव: केमकवाप: यखा: सा। १ । गगनाविका - गगनम् एव चिकां कवाटं यखा: सा।

सुदूरसंस्थाविपुत्तायमान-चन्द्राननाश्वावनिलास्थवायु: । - विष्ठक्षकण्ढालिपताऽविलासा न प्राकृतियं रमणी त देवी ॥ ३५ ॥

न हैमभूषातिभरावनस्ता
रम्याम्बरं रत्नचितं न धत्ते।
तथापि वामा नयनाभिरामा
न प्राकृतियं परमा हि देवी ॥ ३६॥

उल्लोर्थक यें चत्तकु ग्रुखं नो नो वा रसन्ती रसना नितस्बे। तथापि वामा नयनाभिरामा न प्राकृतियं परमा हि देवी॥ ३७॥

१। सुबूरसंखाविष्ठलायमानयन्त्रानना-सुदूरे संख्या वयस्तितः तकात देती: वविष्ठलायमान: वन्द्र: एव वाननं यस्ताः सा ।

श चिनवासवायु: — चनित्रः एव चास्पवायु: मुखनादत: यस्पाः
 सा । बी दि चनित्र इति चीने प्रसिद्धः स प्रक्रमा नित्रासवायुरिकायः ।

न गोस्तनो वचसि राजतेऽस्थाः सक्चिती वा चरेंगी न रही:१। तथापि वासा सुनिमानसज्जा न प्राक्ततेयं परमा हि देवी ॥ ३८॥ नीलादनं वा भजते न मार्ष्टिंश चर्चा न जानाति च चन्दनानाम। तथापि गार्च सततं सुगन्धि न प्राक्षतियं परमा हि देवी ॥ ३८ ॥ बाला न हवा युवतिर्न किंवा न कोऽपि निर्णेतुमसं वयोऽस्याः। समं मनीचा थिश्रवृहयुनां न प्राक्ततेयं परमा हि देवी ॥ ४० ॥ ये ये युवानी युवजानयी ये या या युवत्वी युवकप्रिया याः। षागत्य तां पश्चत विषयात् नेपष्यसाध्या सुषमिति बुद्धिः॥ ४१॥

१। रत्तैः क्रदुनादिभिः।

१। जनादनम्—सुनन्धितैस

चन्दगदिसच्चम् ।

१। नार्टम्-पद्मनार्जनम्।

कामप्रदां तां प्रमदामकामां प्रकाममेनां नतु कांसक्षाम् । कें सदा भजध्वं सुखदां युवानः प्रिथलमस्या इत या युवत्यः ॥ ४२ ॥

पिता पतिः की जननी च कास्था-इत्येव चेत् एच्छ्य वी भणामि। नास्येव माता जनकच नास्ति भक्तीऽविनायो विदितः स यासा॥ ४३

नित्यात्मरा या त्रिगुणात्मकात्जा स्वयं निरीहेण सनातनेन । ष्ययक्तरूपा विजहार येन ययोच योगाळगती प्रजाता ॥ ४४॥

तनैव चाना प्रक्रतिस यच स एव चाना प्रक्रतिस यैव। तथापि भिन्नः प्रदेशः प्रधानात् भेदेऽप्यमेदो न तथाप्यमेदः ॥ ४५॥

१। तथापि धमेदैऽपि न धमेदः, मेदीऽसि इत्यवं:।

षक्षेषु यस्याः सकलेषु सम्यग्-ः व्याप्तोऽवियुक्तस विराजते यः। पयोदपङ्क्रीरिव वैद्युतान्ति-र्नाविष्कृतायाः मणिवत्र खन्याः । ४६॥ नमामि मातर्जगतां निदानं लामाद्यशक्तिं किल विखरूपाम्। वाले प्रसदाम्ब विभुं ग्ररखं प्रदर्भय त्राज्वती यतस्वम् ॥ ४० ॥ हरे: पदं भव्दगुणं चाननां लां च्योमदेव प्रणमामि याचे। गायन् गुचान् प्रीचय मामञस्य त्वं विक्रि नुनं तमनन्त्रप्रक्रिन् । ४८॥ सदागते सर्पगुष प्रसीद तुभ्यं जगवाच नमी नमीऽस्त । पालिक्य गाउं इर मे रजस्वं जगवादापाचसुवक्रपूतः॥ ४८.॥

१। नाविज्ञृतायाः — चनाविज्ञृतायाः ।

२। भनना एव भननां जानाति, न साकः।

तसीनदं लां जगतां प्रकाशं वन्दे शचे कपगुण प्रसीद। प्रदीप्यमानी इर मे तमस्वं प्रकाशयाकानमजं द्वदिखन ॥ ५०॥ लां नौमि शीतं सितमस्त्रदेव प्रदर्भय त्वं जगदीयविम्बम । चादर्भतामेव गतीऽसलां मां संसारदावानसदद्धमानम् ॥ ५१॥ **हिर**ख्य बहुम शैलक्पां लां प्राणदानीं फलगस्यक्पाम्। धनमञ्जूषासवने नसास्य-नन्तं सक्तहर्भय दर्भयेभम् ॥ ५२ ॥ विभोर्वराङ्गाणि तथापचिन्वतः। क्षतोऽपि रहा सङ्गेव वाक्पयम्। सुदः प्रवाहै: क्रतसस्य लोचनं हिमैदताई निलनीदलं यथा ॥ ५३ ॥

१। अपविज्ञतः — वर्षयतः । इत्तमप्रवंशकाविख्यः । वदन्ति इंडब्लाविकं स्तरी सरी ।

• समाधिना यव इव सुद्धितेष्ठाषीः जितिन्द्रियो गगनतलाहिताननः । विचित्तयन् भृषि ययितः सनातनं
• भवाम्बुधौ तर्राष्ट्रमतीन्द्रियं चिरम् ॥ ५४ ॥
न तुदतु कुलिमन्द्रो जातु दिव्याङ्गनानाः
न खलु भवतु यूनो योगिनो योगभङ्गः ।
हरिहरविधियुक्तोऽसी सहस्रार्ष्यो

विचरतु सुरलोकं प्राप्य चन्द्रार्कलोको ॥ ५१न।

,

१ । उत्तमच विचरा। अभी सजी गिति विचरा चतुर्यक्षः ।
 १ । इत्तमच नासिनी । न न न स स स दुतेसं नासिनी भीति-क्षोभी: ।

কবিতাকোরক।

পিতৃস্তবাষ্টক।

জীবকুলে স্বত্নভ, অতিশ্রেষ্ঠ, সার লভিন্থ মানবজন্ম প্রসাদে যাঁহার, কারমনোবাক্যে সেই দেব-অবভার পিতার চরণে আমি করি নমস্কার॥ 🛰

এ ভবে আমার এ যে দেহ-তরুবর
সক্তত গমনশীল, সর্বাঙ্গস্থন্দর
করে বিচরণ, ফুল ফুটস্ত যৌবন
যার, অনস্ত উন্নতি ফল স্থােশভন,
এ তরুর মূল যিনি, সেই হিতকারী
পিতার চরণে আমি নমস্কার করি ॥ ২॥

অবিরত কত হিত-উপদেশ-দানে,
অসুঁরূপ কর্ম করি নিজের জীবনে,
কাজে ও কথায় ঠিক ঐক্য দেখাইয়া,
আদর্শ চরিত্রখানি সম্মুখে ধরিয়া,

গড়িল যে স্বতনে চরিত্রে আমার, সেই পিতদেবপদে করি নমস্বার॥ ৩॥

পিতা মোর শিবতুল্য শুভকারী গুরু, পরম আরাধ্য, ভবে মুর্ত্ত কল্লতরু, না চাহিতে দের সব অভাব বেমন, পুজা করি আমি তাঁর পবিত্র চরণ ॥ ৪॥

আহারে বিহারে সদা ভাবনা বাঁহাঁর
কিসে স্থাণান্তি হবে জীবনে আমার,
স্থানকা, উন্নতি আর মঙ্গলসাধনে
করিছে জীবনক্ষয় আনন্দিত-মনে,
দয়াময় পিতা মোর মূর্ত্তি দেবতার,
নমকার করি আমি চরণে তাঁহার ॥ ৫॥

সদাচার-পরায়ণ, ধর্মগতপ্রাণ, যাগষজ্ঞে রত যত আর্য্যের সন্তান আদরে মস্তকে ধরে, করে বহুমান পবিত্র বেদের বাক্য অর্থতসমান, সেইরূপ শিরোধার্য্য পিতার বচন, পৃঞ্জি আমি ভক্তিফুলে তাঁর জীচর্ণ॥ ৬॥ শুভদিনে করিলেন যিনি সম্পাদন
পবিত্র সংক্ষার—শুভবিবাহবন্ধন,
পালিবারে, স্থকোমল ধর্ম গৃহছের,
মিলায়ে দিলেন যিনি বন্ধু জীবনের,
লভিমু সে ধর্মপত্নী ঘাঁহার কুপায়,
নমক্ষার করি আমি তাঁর রাঙ্গা পায় ॥ ৭ ॥
প্রাণপণে প্রিয়কর্ম সাধিব পিতার,
প্রাণাস্ত্রেও করিব না অপ্রিয় তাঁহার,
উপাস্ত দেবতা মোর পিতা মূর্ত্তিমান,
পৃজি আমি তাঁর রাঙ্গা চরণ তুখান,
হবে হস্ত শুচি, মলা রবে না আমার,
করবোড়ে নমি তাঁর পদে বার বার ॥ ৮ ॥

মাতৃস্তবাইক।

অন্তর-কলুষ-হর, মজল-আকর, সদা বন্দনীয়, অই অনিন্দ্য সুন্দর পাদপদ্ম তব, আমি অধম সন্তান আনন্দে বন্দনা করি, দাও পদে স্থান॥ ১ ॥

কবিতাকোরক।

নন্দন-কানন-জাত প্রত্যক্ষ কুস্থা,
মন্দারাদি হ'তে কিংবা অধিক স্থ্যা,
বিমল-আনন্দপ্রদ, পুণা, গরিমল,
বিন্দি আমি মা তোমার চরণকমল॥ ২॥
অবিরত কর-যুগে অঞ্জলি রচিয়া,
ধ্যানে মগ্ন একমনে একান্তে বিসয়া,
বিনতমন্তকে আমি করিয়া ধারণ,
পূজা করি মা তোমার কমল-চরণ॥ ৩॥

নিরুপমা দেবীমূর্ত্তি তুমি এ সংসারে, অধিষ্ঠান কর মম হৃদর-মন্দিরে; ভক্তিজ্ঞলে প্রক্ষালিয়ে হৃদয়ের মল, পূজা করি মা তোমার চরণকমল॥৪॥

হৃদয় তোমার দেবি ! উৎস করণার,
করুণার ধারাপূর্ণ তব স্তক্তাধার,
শৈশবে আমার ছিল জীবনসন্থল;
বন্দি আমি মা তোমার চরণকমল ॥ ৫॥
তুমি মা অমরাবতী, তুমি মম গুরু,
ধর্ম তুমি, তুমি ভবে মম শাস্তিতরু,

মাতৃস্তবাষ্টক।

সংসার-মরুর বারি**, সর্ক্ত আমার,** পূজা করি পাদপ**ল জননি ! ভোমার**॥ ৬॥

স্বর্গীয় কোঁমল কান্ত গুণে অলম্কত অন্তর তোমার দেবি, কর সংক্রমিত অন্তরে আমার সেই পুণ্যগুণচয়, অক্কতী সন্তানে তুমি হইয়া সদয়, তুর্ববলহৃদয়ে দেবি। দাও সিংহ-বল, বন্দি আঁমি মা তোমার চরণকমল॥ ৭ এ

নিয়ত নিঃস্বার্থভাবে, কফ না ভাবিরা, কত কফ সহিয়াছ আমার লাগিয়া, স্মরিয়া সে সব চিত্ত হইল বিকল, বন্দি আমি মা তোমার চরণকমল॥৮॥

গ্ৰীয়।

মধুর মধুর বড় নব জলধর,
নব তৃণ স্থকোমল কিবা মনোহর,
ফুটস্ত যৌবন, ফুল, নব ক্বিসলয়,
লাবণ্যের লীলাভূমি মধুরতাময়;
নবতাই হবে তবে চাক্ষতা-নিদান,
যার তরে নর-নারী ত্ষিত-পরাণ;
ডাই বুঝি গ্রীম ঋতু এবে ধরা'পর
আাসিল লইয়া সঙ্গে নৃতন বৎসর॥ ১॥

দিবাকর খরতর তেজোমর হইল, পদালয়- জলাশয়- জল-মান নাশিল। ভয়াকুল মেঘকুল কোথায় যে লুকাল, নব বর্ষে লয়ে হর্ষে গ্রীম এ যে আসিল॥ ২॥

কুদ্রাশর জলাশর অতিশয় বিপদে,
বুঝি পড়ে জ্বলে মরে রবি-কর-সম্পদে,
স্থাজীর অতি ধীর জলধির অন্তরে
নাহি পাপ নাহি তাপ কড়ু কারে না ডরে,
হীনসার নীচতার পরিণাম ভাবিয়া,
এল ভবে গ্রীম এবে নব বর্ধে লইয়া॥ ৩॥

দিন দিন রসহীন হরষণে মাতিয়া
তরুদল দাবানল দিল বনে জালিয়া,
নিজে তারা দিদোহারা মজিল যে সমূলে,
ভীতচিতে চারিভিতে পড়ি এবে অকূলে
পশু সব হাহারব করে বন প্রিয়া;
এল ভবে গ্রীম এবে নব বর্ষে লইয়া॥৪॥

রবি রাজা মুহাতেজা দিবসের মধ্যমে,
পরিণত বন যত করে পুণ্য আগ্রমে,
এ সময় পশুচয় অভিশয় তাপিয়া
চিরাগত স্থভাবত হিংসা ভয় ছাড়িয়া
অতি কাছে অরি আছে দেখেও না চাহিয়া;
এল ভবে গ্রীম এবে নব বর্ষে লইয়া॥ ৫ ॥

মরুস্থল, যেন খল, দৃপ্থ, তেজোবিভবে
(যার তাপে ভয়ে কাঁপে পশু পক্ষী মানবে)
ভয়কর উগ্রভর কালমূর্ত্তি ধরিয়া
অবিরল হলাহল দিখলয় দৃধিয়া
উগারিছে, নহে মিছে, বুঝি স্প্টি নালিতে;
নব বর্ষে লয়ে হর্ষে গ্রীম এল মহীতে ॥ ৬ ॥

কবিতাকোরক।

b

আম পাকে, জাম পাকে, পাকে আর কাঁঠাল. পাকে বেল, নারিকেল আহা কিবা রসাল. এইবার, স্বাকার জিড্ড জল আসিল, দিয়া ফল সে সকল সকলেরে তোষিল ু তরুগণ, হৃষ্টমন চরিতার্থ হইয়া; এল ভবে গ্রীম এবে নব বর্ষে লইয়া॥ १॥ পুষ্পবতী বস্থমতী মধুরূপী যৌবনে ছিলুরত অবিরত জনমদোরঞ্জনে অবিকল তারি ফল তাই এবে লভিল; নব বর্ষে লয়ে হর্ষে গ্রীমাঞ্ যে আসিল। ৮॥ আহা কিবা দেখ দিবা- অবসান-সময়ে

আহা কিবা দেখা দবা- অবসান-সময়ে
শাস্ত-বেশে শোভে শেবে ফুল-ফুলনিচয়ে,
বিমোহিত কার্ চিত না হয় তা হেরিয়া;
এল সে'কে গ্রীম এ যে নব বর্ষে লইয়া ॥ ৯ ॥

পাখী সবে কলরবে বরষিছে অনিয়া, উপবন বরিষণ করে মধু, হাসিয়া কি সুক্ষর সুধাকর সুধা দেয় ঢালিয়া; এল ভবে গ্রীষ এবে নব বর্ষে লইয়া॥ ১০ ॥ অমিয়-সমান বিভুগুণগান গাও সবে সমস্কুরে হুদে তাঁরে রাখিয়া, বিধি বিষ্ণু শিব নাশিবে অশিব ভঙ্ক তিনে, মনোহর মনোভবে জিনিয়া॥ ১১॥

বর্ষা।

মেঘেতে ঢাকা আকাশ থেকে
করিছে জল, ডাকিছে ভেকে,
বহিছে ঝড়, পড়িছে গাছ,
নৃতন জলে খেলিছে মাছ,
থেলে বিজুলী, শিশুরা ভীতু,
এল যে এবে বরষা ঋতু ॥ ১ ॥
চক্র ও ভাতুর হায়! মুখ নাহি দেখা যায়

চক্র ও ভাসুর হার! সুখ নাহে দেখা যায়

তাই বুঝি মুখ ভার করি,
ভূখে দিগক্ষনাগণ করে অঞ্চ বরিষ্ণ ধারাকারে ধরাপৃষ্ঠোপরি। শিলা পড়ে অবিরত, হইতেছে আর শত ঘন ঘন অশনি-পতন

. ভীষণ-মূরতি ধরি, হেন, অসুমান করি, দেখা দিল বরষা এখন ॥ ২ ॥

মেঘমালা শিরে ধরি ধন্ত হেন্ মনে করি, লভি নব-বারি-বরিষণ

নহা-মহীধর যত জীবহিতে শত শত নদ-নদী করিছে স্ফল্ক ॥ ৩॥

নব নীল মেঘময় গগনে চাতকচয় ফুল্লমনে করে বিচরণ:

নয়নে পলক নাই পুলকে নেহারে তাই দিনে দিনে কৃষিজীবী জন ; আসিল যে বর্ষা এখন ॥ ৪ ॥

"এল অই বরষা এখন
ভ্ষাকুলে অমুকূল" গায় রে চাতককুল
স্থা-ধারা করি বরিষণ,

্জলধারা পান করি স্মধুর স্থর ধরি কলকঠে গায় অনুক্রণ—

"এল অই বরষা এখন"॥ ৫॥

ত্রিদিবের মনোলোভা বুঝি নিরখিতে শোভা মালাকারে বলাকার গণ যায় জলদের পাশে, শোভে কিবা নীলাকাশে শৈলকোলে হিমানী যেমন; আসিল যে বরষা এখন॥ ৬॥

সোদামিনী-ছটাময় নীল-ক্চি মেঘচয় আছে সদা ছাইয়া অম্বর, শোভা হেরি সকলের মনে পড়ে, কনকের

শোভা হেরি সকলের মনে পড়ে, কনত্ত্বর রেখান্ধিত নিকষপাথর;

কিংবা হেমলতা-জাল- মণ্ডিউ তরু তমাল স্মিয়া সাক্ষ শামল ফলর,

কিংবা কোঁলে কমলায় লয়ে যেন যতুরায় করে কেলি শ্রাম নটবর, আদিল যে বর্ধা ঋতুবর ॥ ৭ ॥

পুলকিত নীপ-তরু হৈরি তাই হাসে চারু, .
ফুলফুলে অঙ্গ স্থানাভন ;
আসিল যে বরষা এখুন ॥ ৮ ॥
আই যে কি দেখা যায় নীল গগনের গায়,
ইন্দ্রধসু, নৈহে এ কখন,
মযুরপু চেছের ছবি কল্পনার বলে কবি
বলে ইন্দ্র-ধমু সুলক্ষণ,

নানা রঙ্ ফলাইয়া চিত্র রেপেছে আঁকিয়া — 'বিশাল ফলকে স্থরগণ; আসিল যে বরষা এখন ॥ ৯ ॥

শরৎ ।

ত্নীল অস্বর হ'তে ভীম-দরশন
বরষা-সম্ভব অস্ব্ধর রাশি যত
হ'ল অদর্শন ক্রমে, উল্লাসে অধীর
দিগঙ্গনাগণ এবে লভিয়া প্রসাদ;
আহা কি মোহন সাজে সাজিল মেদিনী;
এল বে ফুন্দরী সতী শরৎ-ক্ষিনী ॥ > ॥

বনে উপবনে কিবা সরসীর জলে
চারি ভিতে শেত নীল লোহিত বরণ
ফুটিল কমলুরাশি, ফুটিল অমনি
মানবের হৃদপন্ম, দেখিতে দেখিতে
সে শোভা স্থানর, ধীরে ধীরে সমাগত
পক্ষলক্ষণা সতী স্থানরী শর্থ ॥ ২ ॥

মনোজ্ঞ তনিমা মধ্যে, সৈকত-নিতম্বে বিশালতী, মন্থরতা স্থন্দর চলনে লভে ক্রমে কল্লোলিনী, বরাঙ্গনা যথা উদ্দাম যৌবনে যবে করে পদার্পণ ; নিরখিতে বুঝি তাই, মোহিয়া জগৎ ধীরে ধীরে সমাগত স্থন্দরী শরুৎ ॥ ৩ ॥

বিরল বিফলোদয় নিরম্ব ধবল
প্রিয় পতি অম্বুনাহ, তাই প্রণয়িনী
তটিনী অমল-অল্ল-নীরা মন্দগতি
নিরীহ অলস ; পতি সতী উভয়ের
অপূর্বব সমতা হেরি, ধীরে সমাগত
ম্বরগ হইতে দেবী স্থন্দরী শরং ॥ ৪॥

বরষার জল-ধারা-স্নাত বস্থাররা প্রথমে, সম্প্রতি তার পুণা বর তমু হীনপঙ্ক, পঙ্কজের গঙ্কে, মনোহর আমোদিত, অলঙ্কত বন্ধুজীব ফুলে; সধীর সে রূপ হেরি, ধীরে সমাগত পঞ্জলক্ষণা সভী স্থন্দরী শরং ॥ ৫॥

স্থানে স্থানে বনে বনে রাশি রাশি কাশকুস্থম কুটিরা হেলে দোলেঁ, মৃত্ন মৃত্
বায়্র হিল্লোলে; হেন মনে লয়, এবে
কস্থমতী, স্থেত চাক্র চামর ব্যজনে
নিয়ত নিরত, হেরি সখী সমাগত
স্বরগ হইতে সতী সুন্দরী শরং ॥ ৬ ॥

কি ছার সে বস্তু, তার কে করে আদর,
নাহি ব্যবহার বার ; সেই সে স্থানর,
বাহে হর বাস্তবিক উপকার লোকে ;
এত ভাবি পরিণত মনোহর শালিধাত্তে করি, করি পূর্ণ আশা ক্ষবকের,
বীরে সমাগত সতা ফুল্মরী শরৎ ৪ ৭ ৪

ব্যসন-সম্পাত গোরবের সূত্রপাত তেজস্বী জনার, দেখ প্রমাণস্বরূপ উজলিয়া দুশ দিক, কান্ত সম্প্রতা কিরণ বিস্তারি শশী শোভিছে কেমন মেঘমুক্ত এবে, নিরুপম; বৃঝি ধীরে ধীরে সমাগত সতী স্থন্দরী শরুৎ ॥ ৮॥

সগরবে কলরবে মন্থর-গমনে
চলিছে স্থান্দর দলে দলে হংস-হংসী
আনন্দে মগন, কিভি জানে না কেমন
কোমল চরণস্পার্শ, আহা মরি লাজে
নীরব সে রবে শিখী, শিখিছে যভনে
সে চারু চলনভঙ্গি নিভম্বিনী বত;
দেখিতে দেখিতে আহা! সে শোভা স্থানর,
ধীরে সমাগত সতী স্থানারী শরৎ ॥ ১॥

তারকা-কুস্থম-রাশি ফুটিরা, নির্ম্মণ গগনে, স্থদূরে উর্দ্ধে, নিম্নে সরোবরে বিকচ কুমুদর্ম্ম, কি শোভা স্থামর ! চন্দ্র-কর-পুলকিত-নিশা-সমাগমে ; সমাগত ধীরে এ বে স্কামরী শরৎ ॥ ১০ ॥ ৢ নিশা-অন্তে কলনাদে বিহঙ্গমগণ
মিলিয়া সহস্রকঠে গায় স্তুতিগীত
গ্রহরাজ সূর্য্যদেবে করি উদ্বোধন,
সরসী-রূপসী উদ্মীলিয়া পদ্ম-আঁথি
নির্থিছে সে অরুণ-মূরতি মধুর;
বৈকুঠে অমর বন্দী বন্দি স্থললিত
ভবে করে নিদ্রা-ভঙ্গ যেন শ্রীহরির,
কমলা কমলনেত্রে নেহারে বা যেন
গান্তের মূরতি কান্ত। বুঝি সমাগত
প্রজ্জলক্ষণা সতী স্থন্দরী শর্ব ॥ ১১॥

কি পবিত্র নিরমল আনন্দ-প্রবাহে,
কি উদার প্রেমে মাখা সৌন্দর্য্যের স্রোতে
ভাসিছে ভ্বন আহা ! দেখ দেবগণ,
দেখ অই ত্রিদিবের শ্রী অঙ্গে মাথিয়া
সমাগত ভবে দেবী স্থন্দরী শরৎ ;
নমি তোমা বিশ্বপতি পিতা দয়াময়,
স্থাজিলে এ হেন দেবী স্থন্দরী শরৎ ॥ ১২ ৪

আসিল যে শীতকাল কৈলের দোসর,
তরু লতা-আভরণ
কুল পাতো অগণন
দিন দিন ঝুর ঝুর ঝরে নিরস্তর;
স্থমা-কুসুম হায়!
তেমতি ঝরিয়া যায়,
যায় যবে মানবের যৌবন স্কর,
গ্রাসিলে বার্দ্ধক্য আসি কালের দোসর ॥ ১॥
আসিল যে শীতকাল কালের দোসর,

থুলি পত্র-ফুল-সাঞ্জ দীন-বেশে তক আজ উদ্ধপানে চেয়ে আছে নিচল নিথর, বিষয়-বাসনা-হীন তপঃক্রেশে তকু ক্ষীণ ভগবানে করে ধ্যান যেন যোগিবর; আসিল যে শীতকাল কালের দোসর॥২॥ আসিল যে শীতকাল কালের কিঙ্কর, প্রকৃতির লীলাম্বল অল্রভেদী হিমাচল ধবল ধবলাকার
তুষারের পারাবার
নাহি পার কুল তার অনস্ত প্রসর,
আমি কি বর্ণিব তার, আমি কুলে নর ॥ ৩ ॥
আসিল যে শীত, সঙ্গে সমীর শীতল,
দয়িতা উত্তরা আশা.

সূর্য্য তারে ভালবাসা নিবেদিতে, দিতে কোল হইল চঞ্চল,

অচিরে মিলিবে পতি
উল্লাসে অধীরা সতী,
তাই বুঝি ঘন ঘন উচ্ছেসে প্রবল,

তাই এ তুষাররাশি হেরি যে কেবল 🛙 ৪ 🖟 আসিল যে শীত, সহ সমীর শীতল,

পাদ-সেবা চন্দ্রমার
করে নাক কেহ আর,
পতির তুর্গতি হেরি যামিনী বিকল,
তাই তুহিনের ছলে
অবিরল অশ্রন্ধ্রলে
ক্ষিপ্রাণা সতী করে সিক্ত ধরাতক;

আসিল বে শীত, সহ সমীর শীতল। ৫।

আসিল যে শীতকাল কালের দোসর মলিন বিবৰ্ণ ইন্দু ঢালে নিশা অশ্রুবিন্দু মলিন সে ছঃখভারে উষা, দিবাকর, ধরি সে মধুর তান পাখীরা করে না গান সমত্রখে তথী তাই সরে না'ক স্থর আসিল যে শীতকাল কালের দোসর॥ ৬॥ আসিল যে শীতকাল কাল দণ্ডধর মোরা অতি ক্রুরমতি হায় রে ! কি হবে গতি. গতি এবে রসাতল—আঁধার সাগর-ভাবিয়া আকুল-মন একে একে ফণিগণ ধীরে ধীরে নতশিরে প্রবেশে বিবর : আসিল যে শীতকাল কাল দগুধর॥ ৭॥ আসিল বে শীত, সহ সমীর শীতল, **(गरे दित, (म अनल**, ষারা ঢালিত গ্রবল निर्मार्य, এখন ভারা আরামের ছল:

সেই বারি সমীরণ
নাহি পায় কারো মন
এখন, নিদাঘে যারা স্থেয়ে সম্বল;
ভালবাদা, অনাদর কাজেতে কেবল॥৮॥

আসিল দারুণ শীত এবে বে ধরার,

দিন দিন আয়ুক্ষয়

বিষাদ কুয়াসাময়

অপরাহু তুঃসময় ধেয়ে এল হার!

এবে দিবা স্থবিরের

সম দশা উভয়ের,
উভয়ে আঁধার-কোণে মিলিবে স্বায়,
আসিল দারুণ শীত এবে বে ধরার॥ ৯ ॥

বদন্ত।

নবদলে ফুল্লফুলে হইয়া ভূষিত শোভে তরু, তরু-কোলে লতিকা ললিড,. শ্যামল ফুন্দর নব আ্লী অকে মাখিয়া হাসিছে নীরবে পুন জীবন লভিয়া; কৃতান্তের সহোদর শীত হল গ**ত,** উদার বসস্তে হেরি এবে সমাগত ॥ ১॥

কুস্থম-সোরীভ সদা করি বিকীরণ বহে মৃত্ন মন্দ অই মলর-পবন, পুরুশে পরশে স্থ্য বিতরে স্বায়; স্থাধের বসস্ত বুঝি আসিল ধরায়॥২॥

কুস্থমিত কুঞ্জবনে লভিকা ললিত
বায়ু সঙ্গে নাচে রঙ্গে হয়ে পুলকিত, ত
অমুরাগভরে করে ভ্রমর গুঞ্জন,
অহো কি মধুর! যেন স্থা-বরিষণ,
গুন্ গুন্ রবে বুকি গান্ধ বারেবার;
আসিল আসিল অই বসস্ত-বাহার॥ ৩॥

কলকণ্ঠ মাতোয়ারা বসস্তে হেরিয়া পঞ্চমে কুছকু গায় দিগন্ত প্রিয়া, মাতাইয়া ত্রিভূবন গায় অনিবার ; আসিল বসস্ত হের আহা। কি বাহার॥৪॥

निया-निर्मि मानाइत विदाशत सम कलनाएक कछरे त्य शांत्र खवितन. সে রবে না হয় কেবা হরষে বিভল;
আসিল বসন্ত, এবে আনন্দ কেবল॥৫॥

দিনে দিনে নব নব কর্ত সাজ ধরি শোভে চারু চারুতর ধরণী-ফুন্দরী, যোবন ফুটিয়া অঙ্গে অঙ্গেতে স্ক্রিণায়; স্থাথর বসস্ত বুঝি আসিল ধরায়॥৬॥

বাণী-কুঞ্জবনে স্থাথ কর বিচরণ,
ক্লুর কেলি নিশি-দিন তুমি ছে যুবন্!
মাতিয়া যৌবনমদে কর মধুপান,
আসিল বসস্ত তব স্থাথের নিদান॥ ৭॥

এই ত সমর, এবে করি উপার্জ্জন
অবিরত ধনরাশি কর বিতরণ,
কর প্রদর্শন শত শত অবদান,
পরের দাসত্ব করি হারাও না মান,
সমুজ্জল কীর্ত্তি-রথে করি আরোহণ
সংসার-কাননে স্থাপ কর বিচরণ;
আই দেখ দেখ চেরে আহা কি বাহার!
আাসিল স্থাপর তরে বসস্ত ডোমার ॥ ৮ ॥

সাধ প্রাণপণে সদা জগতের হিত প্রেম্বের মোহনমন্ত্রে হইরা দীক্ষিত, করি সদা প্লারহিত কর রে নির্দ্মাণ দেবতার লীলাভূমি স্বর্গের সোপান, যাইতে নন্দনবনে কর রে যতন, কীর না বিলম্ব আর সাজ রে এখন; অই দেখ দেখ চেয়ে আহা কি বাহার! আসিল স্থথের তরে বসস্ত তোমার॥ ৯॥

যুবা।

ভূবন-বিজয়ী কাম বীরেঁর প্রধান,
কটাক্ষেতে যিনি তার বধিলেন প্রাণ;
দেবগণ করে ধ্যান ঘাঁহার চরণ,
কামনারহিত যিনি যোগেতে মগন;
বিশ্বের জনক যে বা জনমবিহীন,
প্রালয়ে ব্রহ্মাণ্ড হর ঘাঁহাতে বিলীন;
অশেষ-বিভৃতিযুত সেই ভগবান,
করুন করুণাসিক্ষু মঙ্গলবিধান ৪১॥

করুণাপ্রবণমনা জ্ঞানেতে প্রবীণ,
প্রকৃতির সঙ্গে বার গভীর প্রণয়,
হেন নরবর এক, বয়সে,নবীন,
হেরিতে স্বভাব-শোভা আকুল-হুদয়,
একদা নিদাঘকালে দিনাস্ত-সময়,
নীরনিধিতীরে ধীরে উপনীত হয়।

দরার সাগর এই সমুদ্র মহান্,
ফুশীতল-জল-লব-পৃক্ত-সমীরণে
করিছে বীজন, আহা। যুড়াল পরাণ,
আলিঙ্গরে উর্মিবাছ তুলি সবতনে,
কলস্বরে সমাদের করে সম্ভাবণ,—
এত ভাবি হঁ'ল যুবা হরষিত-মন ॥ ৩॥

পয়োধির পরিচর্য্যা প্রিয় ব্যবহার
প্রকৃতি-প্রেমিক প্রতি নহে অসম্ভব,
নহে অসম্ভব, যুবা প্রকৃতি-উদার,
করিবে মহান্ ভাব হৃদে অসুভব;
পরহিত-ব্রতে রত মহাত্মা যে জন,
উদার চরিত্র ভার বুবে জানিগণ ॥ ৪ ॥

ক'রেছিল এত দিন শ্রেবণে শ্রেবণ
অপার মহিমা যার কীর্ত্তি মহীয়সী,
স্বচক্ষে সমুদ্রে আজুকরি নিরীক্ষণ
উথলিল যুবকের হুদে ভাবরাশি;
ক্ষুদ্র দেহ কেমনে তা করিবে ধারণ,
কঠি-নালী-পথে তাই হ'ল নির্গমন॥ ৫॥

মণি-মাণিক্যাদি নানা রত্বের আকর
প্রভূত-ক্ষমতাশালী প্রবীণ প্রাচীক
সমুদ্র, দরিদ্র আমি অতি ক্ষুদ্র নর—
অজ্ঞান বালক আমি সামর্থ্যবিহীন,
তথাপি আমারে নাহি করে তুচ্ছ জ্ঞান,
ইহাতেই মহতের মহত্ব-প্রমাণ ॥ ৬॥

প্রাণের প্রতিমা সতী সীতা পূর্ণশান,
দশানন-রাহু তাঁরে প্রাসিল যথন,
ঘেরিল রাঘবে ঘোর ছ্থ-অমানিশি;
নাশিবারে আধি তাঁর বারিধি তথন
ধরিল পাবাণ বুকে হরষিত-মনে,
পরহিতে নিজ প্রাণ তুণ হেন গণে । ৭ ॥

C

অনল প্রবল রিপু, তথাপি যতনে
সতত জলধি কোলে করিছে ধারণ,
দহন করয়ে দেহ, তথাপ্পি দহনে
সলিল-ইন্ধন-দানে করিছে পোষণ ;
ঘটে নাই প্রকৃতির বিকৃতি ইহার,
শত্রু-মিত্র-ভেদজ্ঞান প্রসব যাহার দ্বাদা

মন্থন-যাতনা দের দেবাস্থরগণ,
রত্নপতি রত্নরাজি করে প্রতিদান;
জলধি-ত্নহিতা ধরা দহি নির্যাতন
ক্ষকের, করে রত্ন অকাতরে দান;
ধত্য হে সাগর তুমি, তুমি পুণ্যবান,
ধরাধানে কে বা আছে তোমার সমান?

অরক্ষান্ত মণি করে লোহ আকর্ষণ
থাকে যদি সন্ধিকটে, কিন্তু অম্বুরাশি !
বড় গুণ ধর, গুণে নগবালাগণ
মুগ্ধ হরে পৃহ ছাড়ি ভজে দিবা-নিশ্বি
গুণের মোহন শক্তি করি উদ্দেষ্যণ,
উভরে তুলনা বল হয় কি কখন ?॥ ১০॥

হ'ত যদি এ সংসার জীবে দয়াবান্,
সর্বভৃতে সমদশী ইহার মতন,
না থাকিতু যদি ভবে গর্ব অভিমান,
প্রেম-মন্ত্রে দীক্ষা যদি পে'ত সর্বাঞ্জন;
হৈরিতাম ভবে তবে নন্দনকানন,
করিতাম স্বর্গভোগ স্থে আজীবন ॥ ১১॥

তুঃখভরে এইভাবে বলিতে বলিতে
অকৈস্মাৎ যুবকের হইল পতিত ু
পশ্চিমগগনে দৃষ্টি, অমনি হরিতে
স্থযোগ পাইয়া রবি, প্রায় অন্তমিত,
আকর্ষিল হ'য়ে যেন স্বর্ধাপরবশ
জলধির স্তবে মগ্ন যুবার মানস । ১২॥

অন্তাচলে যায় রবি হেরিয়া নয়নে
হইল মলিন তার কমল-বদন,
বিপন্ন ভাবিয়া তায় বড় ছঃখ মনে,
কাতর করুণকঠে সম্ভাবে তখন;
পরছুখে বিগলিত কোমল-হৃদয়,
পাবাণে গঠিত চিত উদাসীন রয়॥ ১৩॥

কোথা বাও ভামুদেব ! ক্ষণেক দাঁড়াও,
কোথা গেল বল তব সে বীৰ্য্য-বিভব,
মনোচুখে অধোমুখে বল কোথা যাও,
কেন হেন দীনভাব দিননাথ ! তব ?
আঁধার-সাগরে কেন ডুবায়ে ধরণী,
অতল জলধিজলে ডুবিবে আপনি ? ॥ ১৪॥

ম্পর্শে স্পর্শে সুথকর নিশাকর-কর,
ভীম-করে অকাতরে করিয়া তাড়ন
কাড়িয়া লইলে তার রাজ্য মনোহর,
কালানল-সম তুমি সহস্রেকিরণ,
সেই শশী বুঝি তোমা করে নির্বাসন
এবে, হায়! তব ভাগ্যে সমুদ্রে মরণ॥ ১৫॥

অতিক্রমি হীন দশা লভিতে উন্নতি
পারে, বদি করে নর একান্ত যতন,
লভিলে উন্নতি কালে হবে অবনতি,
বিনা বাক্যে কার্ম্যে কি হে করিতে জ্ঞাপন,
প্রথমে উন্নয়গিরি, উর্দ্ধে পরক্ষণ,
অবশেষে অন্তাহলে কর আরোহণ १॥ ১৬॥

হ্বরূপ সম্পদ হৃথ সাধের যৌবন
ক্ষণপ্রভা-প্রায় সব ক্ষণে পায় লয়,
ইহাই কি কোক-চিত্তে করিতে অঙ্কন
বাসনা হইল তব মানসে উদয় ?
তাই পূর্ববিচল হ'তে উদ্ধে আরোহণ,
অবশেষে অন্তগিরি করিছ গমন ? ॥ ১৭ ॥

একি দেখি অকস্মাৎ মেঘ-দৈত্য হায় !
হয়েছেঁ ধাবিত, লক্ষ্য বিভাবরী-অদি,
দেখিতে দেখিতে হুফ প্রদোধ-সহায়
আক্রমিল দিবাকরে সর্ববাঙ্গ আবরি;
বুঝিলাম এবে হায় ! কথা মিধ্যা নয়,
আবে না বিপদ ভবে একাকী নিশ্চয় ॥ ১৮ ॥

ধিক্ ভোরে অরে মেব ! ছ্রাচার খল !
কি ফল হইল বল করিয়া পীড়ন
ছুর্গত তপনে ? অহো ! বুঝেছি, কেবল
পরের অনিফে ভোর চেফা, আরোজন ;
বিরহীর প্রাণে ব্যথা দিস্ অনিবার,
ব্যুপাতে কত প্রাণী করিস্ সংহার ॥ ১৯॥

কবিতাকোরক।

9.

ধিক্ তোরে অরে ধৃত্ত তুরস্ত পামর !
বারিধির বারি নিত্য তুলি নিজকরে
দরা করি জন্ম তোরে দিক দিবাকর,
কোন্ প্রাণে পীড়া দিস্ তারে অকাতরে ?
জানি না কি দশা তোর হইবে তখন,
মহারোধে দেখা দিবে যবে প্রভঞ্জন ॥ ২০ ॥

হ'ল অই রাকাশশী আকাশে উদিত,

া হাসিময় মনোহর স্থার আকর,

থরতর-ভামু-ভাপে মেদিনী তাপিত,

তাই বুঝি স্থারাশি ঢালে স্থাকর;

নাশিতে রবির কৃতি চন্দ্রমা-উদয়,

হেন প্রতিবোগিভাব প্রেষ্ঠ অতিশয় ॥ ২১ ॥

শীত-অন্তে সঞ্জীবন বসন্ত উদর,
তপনের তাপ-অন্তে স্থাংশুকিরণ,
বেলা-বন হর হত নদীগার্ভে লয়
উর্বর পুলিনরূপে দের দরশন;
আপাতভঃ বাহে মোরা করি তুঃধজ্ঞান,
পরিণানে স্থাকর বিধির বিধান ৪২২৪

কলধেতি-চক্র-সম চন্দ্রমামগুল,
কাল রেখাবলী তাহে কতই শোভন,
চন্দ্রাননে নেত্রপক্ষা কাল জ্রমুগল
করে না কি কামিনীর শোজা-সম্পাদন ?
শুপ্ররবে ভূসরাজ বিরাজে বখন,
হয় না কি পথ্নিনীর চারুতা-বর্জন ? ॥ ২৩ ॥

ক্ষতি নাই থা'ক চিক্স অক্সে অনিবার,
কে বলৈ কলঙ্ক, সে ত অঙ্গের ভূবল,
কর' না হে অন্থনিধি! কলঙ্ক আমার
তব জলে চিক্তগুলি করিয়া ক্ষালন,—
করিল প্রার্থনা হেন শশী কলাবিৎ,
পূরা'ল জলধি তার বাঞ্চা লোকাতীত ॥ ২৪ ॥

এ হেন প্রার্থনা যদি না করিবে শন্তী,
অলধির জলে ময় থাকি নিরবধি
কেন না ঘূচিল ভার এ কলঙ্করালি ?
কালিতে সমর্থ কিংবা নহে কি উদ্ধি ?
চন্দ্রমা প্রমাপ্রিয় জানে জগজন,
শোভা-হানি হ'লে কভু হাসিত এমন ? ॥ ২৫ ॥

কোথা হ'তে এল অই নীলিমা শশীর ?
সত্যই কি শশ কিংবা চকিত হরিন ?
অলীক এ সব, শুধু কল্পনা কবির,
শশ মৃগ সব মিথ্যা প্রবাদ প্রাচীন ;
স্পান্ট আমি হেরিতেছি অঙ্গেতে ইহার
মসীম্য করলিপি বিজ্ঞ বিধাতার ॥ ২৬ ॥

শুন রে মানব !

- ধন জন বৌবনের ক'র না গরেব,

অনিত্য এ সব ;

ক'র না ক'র না

অ্ঞানের গরিমা, ছাড় বিষয়-বাসনা

অ্সার ভাবনা ;

তব হিত তরে,

লিধিমু বিধাতা আমি অক্ষর অক্ষরে,

হের হিমকরে ॥ ২৭ ॥

হ'তেছে উদয়, ক্রেমে পূর্ণ উপচয়, ক্রমে হয় ক্ষয়, ক্রমণ বিলয়; যথা চন্দ্রমার,
বার বার, হেন দশা নিয়তি তোমার,
জেন এই সার;
চঞ্চল যৌবন,
চঞ্চল এ রূপ তব, চঞ্চল জীবন,
শশীর মতন;
শশীর মতন
জননে মুরণ, পুন মরণে জনন,

কর পরাজয়
স্থাপন-অসিধারে দেহে রিপুচয়,
ছুফ অতিশয়;
কর অবিরল
মলিন হাদয় তব বিশুদ্ধ বিমল
উদার সরস;
শান্তিপ্রেক্রবণ
সত্য সনাতন বোগ ধর্ম আচরণ

কর অসুক্রণ :

যাবে তুখভার, হবে আনন্দ অপার, আসিবে না আর এ ভবে আবার ॥ ২৯॥

স্বত্তে লিখিলেন বিধি দ্য়াম্য়, ভ্রমেও না দেখে নর থাকিতে নয়ন. না বুঝিয়া কিন্তু হায় ! প্রকৃত বিষয়, व्यक्तक हैं। एक करत कनक तरेन : লোকিক অয়শ যশে ধিক্ শতবার. পুংশ্চলী রসনা শুধু প্রসৃতি যাহার ॥ ৩০ ॥ আছে কি এ বিশ্বমাঝে শশাঙ্ক যেমন क्राप श्राप कमनीय मानामुक्षकत ? আছে কি পদার্থ হেন পরার্থ-জীবন পরার্থসাধনে যার কৃতার্থ অন্তর 🤨 সুধা ঢালি অঙ্গে অঙ্গে চণ্ডী প্রকৃতির হাসি হাসি শান্তিত্বখ সাধিছে প্রাণীর॥ ৩১॥ আহা কিবা মনোহরা মোহিনী প্রকৃতি অনিন্দ্য স্থন্দরী দেবী অঙ্গে কত শোক্রা,

অনিন্দ্য স্থানরী দেবী অঙ্গে কড শোজা, বিশুদ্ধ বিমল বেশ প্রশাস্ত-মূরতি, অনস্ত গন্তীর দ্বির মুনিমনোলোভা; হেরি এ মূরতি আজ ধস্য তুনয়ন, নির্থিল যে না তার বিফল জীবন॥ ৩২॥

উদার অম্বর ললাট স্থন্দর,
ঘনাবলী চারু অলকদাম,
শ্যামতরুপত্র বসন বিচিত্র,
রসনা বিলোল জলধি নাম;
আহা মরি ুমরি! কি রূপ-মাধুরী
পান করি করি উদাস মন,
শান্তির মুরতি দেবী ভগবতী
সামাস্থা রমনী প্রকৃতি নন্ ॥ ৩৩॥

আরুণ-বরণ ভাসুর কিরণ
নীরদে বিলম্বি কি শোভা ভার,
না না, এ যে ধীর প্রকৃতি দেবীর
সীমস্তে সিন্দুর ভ্যণ-সার।
অহা আভরণ করি না দর্শন,
অপ্রবি দর্শন তথাপি বড়,
বে হেরিবে রূপ হেন অপ্রকণ
হইবে মোহিত, হইবে জড়;

ভক্তি-উপহারে এ হেন দেবীরে বাসনা মানসে সতত সেবি. শাস্তির মূরতি সজী ভগবতী সামাস্থা নহে রে প্রকৃতিদেবী॥ ৩৪॥ জনমনোলোভা কতই যে শোভা চন্দ্রাননে অই পীযুষে ভরা, বড় সাধ, সুধা পান করি সদা এ চাঁদমুখের ত্রিতাপহরা; র্চাদ অভিরাম আননের নাম ক্ষুদ্র এ দেবীর আনন তবে मृत्त व्यवस्थान विलिटन विकान. কুদ্ৰ দৃশ্যমান তাতেই ভবে ; শ্রুতিপ্রীতিকর কিবা মনোহর কলধ্বনি অই কি শুনি কাণে, বিহঙ্গকুজন এ নহে কখন, গাইছে প্রকৃতি মধুর-তানে; অতি ভক্তিভরে স্মধুর-স্বরে গাইছে বিভুর মধুর গান, সুগন শৌভল বহে অবিরল আনন-অনিল ত্রিলোক-প্রাণ;

রমণী-রতন ভবে অতুলন বিলাসবিভ্রম জানে না কভু. শান্তির মূরতি 🗸 সতী ভগবতী নহে রে সামান্তা প্রকৃতি স্বভূ॥ ৩৫॥ স্থ বৰ্ণ ভূষণ করে না ধারণ আদরের ধন ললনাকুলে. বরণ উজল স্থচারু কুগুল শ্রবণযুগলে নাহিক ছলে: কণ্ঠভ্ষা হার দেখি না ইহার, বহে না নিতম্ব কাঞ্চীভূষণ. অমূল্য রতনে খচিত যতনে নাহি পরিধানে সূক্ষ্ম বসন: শোভা বিমোহন তথাপি কেমন. তথাপি কেমন মোহন সাজ, শান্তির মূরতি স্থন্দরী প্রকৃতি সামান্তা নহে রে বুঝিনু আজ্ঞ ॥ ৩৬-৩৭॥ নব অনুরাগে কুকুমের রাগে করে না রঞ্জিত চারু চরণ, গন্ধবিলেপন দেহপ্রসাধন ष्ट्रात ना जन्मनव्यक्त (क्यन:

তথাপি কেমন শিরীষ-প্রসূন-স্কুমার-কায় সৌরভময়, শাস্তির মূরতি দেবী ভগবতী সামান্তা রমণী প্রকৃতি নয়॥ ৩৮-৩৯॥ প্রকৃতি জরতী কেহ বা যুবতী কিশোরী কেহ বা বালিকা বলে. যথার্থ বিচার করিতে ইহার নাহি হেন জন জগতী-তলে. নাহি হেন জন কুরে নিরূপণ প্রকৃতিদেবীর বয়স কত, রূপে বিমোহিত তথাপি সতত স্থবির যুবক কিশোর যত: ভক্তি-উপহারে হেন দেবতারে বাসনা মানসে সতত সেবি. শাস্তির মুরতি সতী ভগবতী সামান্তা নহে রে প্রকৃতিদেবী॥ ৪০॥ রূপে গরবিণী ভূষণশালিনী যুবক-রমণী যুবতী যত, যুবতী-রুমণ ! ওহে যুবজন এ'দ হুরা করি তোমরা শত ;

নাহি অলকার, শ্রীঅঙ্গ ইহার
তথাপি কেমন শোভিছে দেখ,
স্থবৰ্ণ-ভূষণ • শোভা-নিকেডন,
এ কথা অলীক মনেতে রে'থ॥ ৪১॥

তোমরা যুবক! প্রকৃতি-দেবক
হও, ইথে নাহি নিয়ম-বিধি,
চরণে শরণ লও অফুক্ষণ,
মিলিবেঁ রতন অমূল্যানিধি;
প্রমদা প্রকৃতি নানারূপে সভী
পূরাবে কামনা, কামনা বারি,
তোমরা যুবতি! যদি অফুকৃতি
কর, তবে হবে আদর্শনারী ॥ ৪২ ॥

কাহার নন্দিনী ইনি কাহার বনিতা,
কোন্ কুল সমূজ্জ্বল জনমে ইহার,
কোথা বা আছয়ে পতি, কোথা মাতা পিতা,
জানিতে বাসনা যদি, শুন বলি সার—
জনক জননী নাই, কিস্তু বর্ত্তমান
আহে পতি অবিনাশ পুরুষ-প্রধান ॥ ৪৩ ॥

কবিতাকোরক।

8.

পরব্রহ্ম সনাতন নিরীহ অব্যয়,
প্রকৃতি অব্যক্তরূপা অনাদিনিধন,
সমীভূত-সম্বরজস্তমোগুণময়,
পতিরূপে পরমেশে করিল বরণ;
পতি সতী উভয়ের শুভ সংমিলন
জড জীব জগতের প্রজনকারণ॥ ৪৪॥

যথা সতী তথা পতি সদা বর্ত্তমান,
সঙ্গ ছাড়া কেহ কারো নহে ক্ষণকাল,
যেই পত্নী পতি সেই অভিন্ন পরাণ,
উভয়ে অভেদ, তবু প্রভেদ বিশাল;
অন্তুত রহস্ত আমি বুঝিতে অক্ষম
পাপেতে মলিনচিত্ত অজ্ঞ নরাধম॥ ৪৫॥

অজ্ঞাত খনির মাঝে বিরাজে যেমন
স্তারে স্তারে ধাতু, কেহ দেখিতে না পায়;
কিংবা জানে না বিরহ, রহে অমুক্ষণ
ব্যাপিয়া তাড়িত যথা জলদের গায়স্কান্ধে অঙ্গে মহাদেবী প্রাকৃতি সতীর
বিহরে তেমতি মহাদেব অশ্বীর ॥ ৪৬ ॥

নম নম ভগবতি বিশ্বরূপণি।
আদ্যা শক্তি মহাদেবি ! বিশ্বের নিদান,
জয় জয় ব্রক্ষময়ি আত্মবিনোদিনি।
বল বল কৃপা করি বিভুর সন্ধান,
দেখাও দেখাও দেবি ! দেখাও তাঁহায়,
লভিয়াছ দেহে প্রাণ বাঁহার কৃপায়॥ ৪৭॥

তোমায়—তোমায় শত সহস্র প্রণাম
শব্দগুণশালী অয়ি অনস্ত গগন !
অনস্ত বিভুর গুণ গাও অবিরাম,
কুপা করি কর্ণায়ত করহ সিঞ্চন,
গাও দেব ! গাও শুনি, আকৃতি কেমন,
কেমন প্রকৃতি তাঁর, কে বা প্রিয়জন ॥ ৪৮ ॥

নমন্তে প্রন্দের জগতের প্রাণ!
যাও বিভুর সদন, করি এ মিনতি,
ব্রিলোকে অ্গম্য তব নাহি কোন স্থান,
স্পর্শগুণশালী ভূমি ওহে সদাগতি;
প্রেশের পুণ্যময় প্রশ লভিয়া
হর মম রজোরাশি গাঢ় আলিঙ্গিয়া॥ ৪৯॥

নম নম বিভাবস্থ দেব, জ্যোতির্শ্বর !

রূপে গুণাঘিত তুমি তিমিরনাশন,
প্রবৈশি অন্তরে মম হর তফ্চয়,
তব গুণে রূপবান্ নিখিল ভুবন ;
হর মম তম, আর এই ভিক্ষা চাই,
বিভার স্বরূপ যেন দেখিবারে পাই ॥ ৫০ ॥

নমি আমি অমুদেব! নমি যোড়করে
ধবল শীতল তুমি রস-গুণমার,
বিমল দর্পণরূপে দেখাও সন্তরে
প্রতিবিদ্ধ প্রাণেশের, বিলম্ব না সয়;
তা'ও যদি না দেখাবে, রাথিব না আর
ভবদাবানলে দক্ষ এ দেহ আমার॥ ৫১॥

নমি আমি ক্ষিতিদেবি ! নমি গো তোমায়, ফল-শস্তরূপে তুমি জীবন সবার, স্থান তুমি, তুমি রত্ন, তুমি শৈলকায়, অনস্ত ভোমার রূপ, মহিমা অপার ; কহ কোথা প্রোণেশের প্রিয় নিকেতন, দেখিয়া মনের সাধে যুড়ার জীবন ॥ ৫২ ॥

চিন্ময়ে তন্ময় যুবা, নিস্পন্দ নীরব,
গগন-নিহিত-নেত্র, চৈততাবিহীন,
প্রেহরেক পরে, বেন লম্বকায়-শব,
হ'ল ভূতলে শ্যান মহাযোগাসীন;
ধ্যানে মগ্র যোগিবর মুক্তিত-নয়নে,
মুক্তিত ইন্দ্রিয় যত, প্রবেশিয়া মনে॥ ৫৪॥

ঘটে না ইহার যেন ধ্যানেতে প্রমাদ—
করুন্ দেবাদিদেব এই আশীর্ননাদ,
ইন্দ্রের আদেশে যেন স্থরাঙ্গনাগণ
⊶পাতিয়া যৌবন-ফাঁদ না ভুলায় মন,
হয় যেন বিধি শিব সহ নারায়ণ
সহস্রকমলদলে আত্মার মিলন,

কবিতাকোরক।

88

সিন্ধ শুদ্ধ মুক্ত আত্মা আনন্দে মগন চন্দ্ৰসূৰ্ব্যলোকে যেন করে বিচরণ ॥ ৫৫ ॥

